संत मत–मूल सत्य

संत मत सूफियों, फकीरों व सन्तों के सत्यानेवषणों व अनुभवों का परिणाम है। इन सूफियों व सन्तों के सत्यान्वेषण किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति अथवा राजनीति के दबाब और प्रभाव से अलग व स्वतंत्र हैं, इसमें जीवन के सत्य जीव मात्र के कल्याण के लिए उदघाटित किए गए हैं। संतमत सत्य की धुर तक पहुँचता है, अतः इसका दृष्टिकोंण विशाल है। इसके आधार पर विभिन्न मतों की भिन्नता को समझते हुए विभिन्नता में एकता के दर्शन किए जा सकते हैं।

संत मत के मूल सत्य

- सूफियों एवं सन्तों का प्रथम मूल सत्य हुमाअजोस्त है, अर्थात सब कुछ उसी से है, जड़ चेतन सब उसी से है, वही एक मात्र सबका आधार है। वह सतचिदानन्द प्रेम एवं दया का स्वरूप है। वह गुणों से ऊपर निर्गुण है। सूफियों ने इसे जात व अन्य संतों ने दयाल पुरूष या सत-पुरूष कहा है। यही परमात्मा है। संत मत के अनुसार अद्वेत सत्य है, परन्तु द्वेत भी अपनी जगह ठीक है।
- दूसरा मूल सत्य है 'पिण्डेशु ब्रह्माण्डे' अर्थात जो पिण्ड में है वही बह्माण्ड में। ब्रह्माण्ड के आधार दयाल पुरूष है और बर्हिमुख रचना काल की है। पिण्ड में सर्वस्व आत्मा है किन्तु बर्हिमुख पसारा मन का है। आत्मा दयाल पुरूष का अंश है और त्रिगुणात्मक शक्ति काल का अंश है। जीवात्मा में दयाल पुरूष का अंश आत्मा है और प्रकृति का अंश मन है। सामान्यतः जीवात्मा प्रायः कमजोर है और अपने केन्द्र अंशी की ओर खिचनें में असमर्थ है। अहं, काम, क्रोध लोभ, मोह से मन का संतुलन बिगड़ जाता है और आत्मा परदे दर परदे कैद होकर अपने केन्द्र की ओर खिचने में असमर्थ हो जाती है। जीवात्मा मन के असंतुलन ओर प्रेम के दब जाने से अपने अंशी से बिलकुल भिन्न नजर आती है।
- संत मत का तीसरा मूल सत्य कर्मफल का सिद्धांत है, अर्थात जीव अपनी चाह और कामना के अधीन जो कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य मिलता हैं। जीव कर्म भोग कर अर्थात टकरा कर पलटे और परमार्थी चाह पैदा हो। अगर जीव लक्ष्य की ओर मुड़ने लगता है तो दयाल पुरूष की दया और क्षमा का सहारा भी इस हद तक उसे मिलता है कि वह बरदाश्त की संभाल रखता है। अगर कर्म पूर्ण परमार्थी चाह के साथ निष्काम भाव से पूर्ण समर्पण के साथ किए जाते हैं तो जीव कर्म फल से मुक्त रहता है।

- संत मत का चौथा मूल सत्य है कि बिना सद्गुरू की शरण लिए जीव का उद्धार प्रायः संभव नहीं है। मौजूदा सद्गुरू की शरण लो! जो हमारे सारूप हो तथा प्रत्यक्ष हो उसी को हम सर्वांग प्रेम कर सकते हैं तथा उसे प्यार कर हम आसानी से सच्ची शरण ले सकते हैं। सद्गुरू अपने निजस्वरूप में स्थित होता है। वह दयाल पुरूष का निजपुत्र तथा मुक्तिदाता होता है।
- संत मत का पाँचवा मूल सत्य यह है कि संत मत के साधनों से जीव का उद्धार संभव और सरल है। सद्गुरू अपने प्रेमांग द्वारा शिष्य में प्रेम जागृत करते हैं और अपनी ताकत से शिष्य की सुरत को निज स्वरूप तक खेंचते हैं जिससे शिष्य का निज स्वरूप खुल जाता है और प्रेमांग जागृत हो जाता है और पूरी तरह उभर उठता है। जब शिष्य खुद अपने अंतःकरण को शुद्ध करके उसमें प्रेमांग उभारता है और भरता है तो यही तफ्सियाँ-कब्ज कहलाता है। जब शिष्य गुरूमत रहकर स्वयं अपने मन को संतुलित करता है तो यह तफसियाँ नफ्स कहलाता है। जब शिष्य अपने चरित्र को सुडौल बनाते हुए अपनी सुरत को ऊपर चढ़ाने का अभ्यास करता है तो यही कस्ब है तथा इसे सुलूक का तरीका कहते हैं।

संत मत के आंतरिक अभ्यास

संत मत के मुख्यतः तीन आंतरिक अभ्यास हैः- भजन, सुमिरन तथा ध्यान जिन्हें सुफियों की भाषा में जिक्र, फिक्र और राबता कहते हैं। यह अन्तर्मुखी अभ्यास है जिनसे सूरत अन्तर में खिचती है तथा मन संतुलित होता हैं सुमिरन अपने इष्ट (गुरू) को पुकारना, उसे याद करता है। ध्यान अपने इष्ट के स्वरूप में अन्तदृष्टि जमाना है और भजन से अभिप्रायः सूरत शब्द से है जो कि आत्मा के आकर्षण की हिलोर है। ये तीनों अभ्यास महत्वपूर्ण है और एक दूसरे के पूरक भी। प्रायः सुमिरन और ध्यान से प्रेमांग जल्दी जागृत होता है और खिंचाव तेजी से होता है। इसलिए यह जज्ब के तरीकों में बहुत सहायक होती है। भजन व अभ्यास में एकाग्रता के साथ स्थान विशेष पर ठहराव भी होता जाता है जिसे मन को संतुलन में लाने की ताकत प्राप्त होती है। यह अभ्यास सुलूक के तरीके में बहुत काम करता है। ये तीनों अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण और संतमत में आवश्यक है।

संत मत के प्रमुख अंग

संत मत के प्रमुख अंग तीन हैं - सत-नाम, सत-संग तथा सद्गुरू

संत मत का प्रमुख आधार सत-गुरू है। सत-गुरू वह महान आत्मा है जो निरंतर ईश्वर में लय रहता है और जिसकी अभेद दृष्टि है। सद्गुरू वह महान आत्मा है जो ईश्वर का साक्षात्कार कर पूर्ण आध्यात्मिकता प्राप्त कर चुका है। ऐसी महान आत्माओं के द्वारा व्यावहारिक रूप से प्रदर्शित आत्मा की उन्नति के सिद्धान्तों तथा साधनों का सामूहिक रूप ही सतसंग है।

सत-गुरू ईश्वर का ही रूप है जो सर्वसाधारण का उद्धार करने मनुष्य रूप धारण कर आता है। ऐसे महापुरूष के समीप रहकर, उनका व्यवहार देखकर तथा उनके आदेशानुसार जीवन बनाकर साधक भी गुरू रूप हो जाता है।

संतमत में सत-गुरू के सतसंग का विशेष महत्व है। साधक सतगुरू के चरणों में स्वयं को समर्पित कर निरंतर उनके आदेशानुसार जीवन व्यतीत करता है। सदैव ईश्वर में लय, अभेद दृष्टियुक्त, सतगुरू, साधक को ईश्वर के आदेशों को समझने में मदद करते हैं जिसके अनुसार जीवन व्यतीत कर साधक अपना उद्धार कर सकता है।

संतमत में सतगुरू शिष्य की पूर्णता की परीक्षा कर लेने के बाद ही शिष्य को दीक्षा देते हैं। जब शिष्य अपना सर्वस्व गुरू के चरणों में अर्पण कर देता है तभी वह दीक्षा का अधिकारी बनता है। गुरू में पूर्ण समर्पण तथा अनन्य विश्वास होने पर सतगुरू अपने शिष्य की निरंतर रक्षा करते हैं, संभाल करते हैं। गुरू आश्रय अनुसार चलने से साधक अहंकार तथा मोह रहित हो जाता है, तथा उसका मन शुद्ध हो जाता है तथा सतगुरू के लिए उसकी श्रद्धा बढ़ती जाती है।

सत-गुरू जब दीक्षा देते है तो शिष्य को उसकी रूचि के अनुसार नाम दे देते है। जिस नाम से, चाहे वह वर्णात्मक हो या धुनात्मक, ईश्वर से एकता हो जाए, वही सत-नाम है।